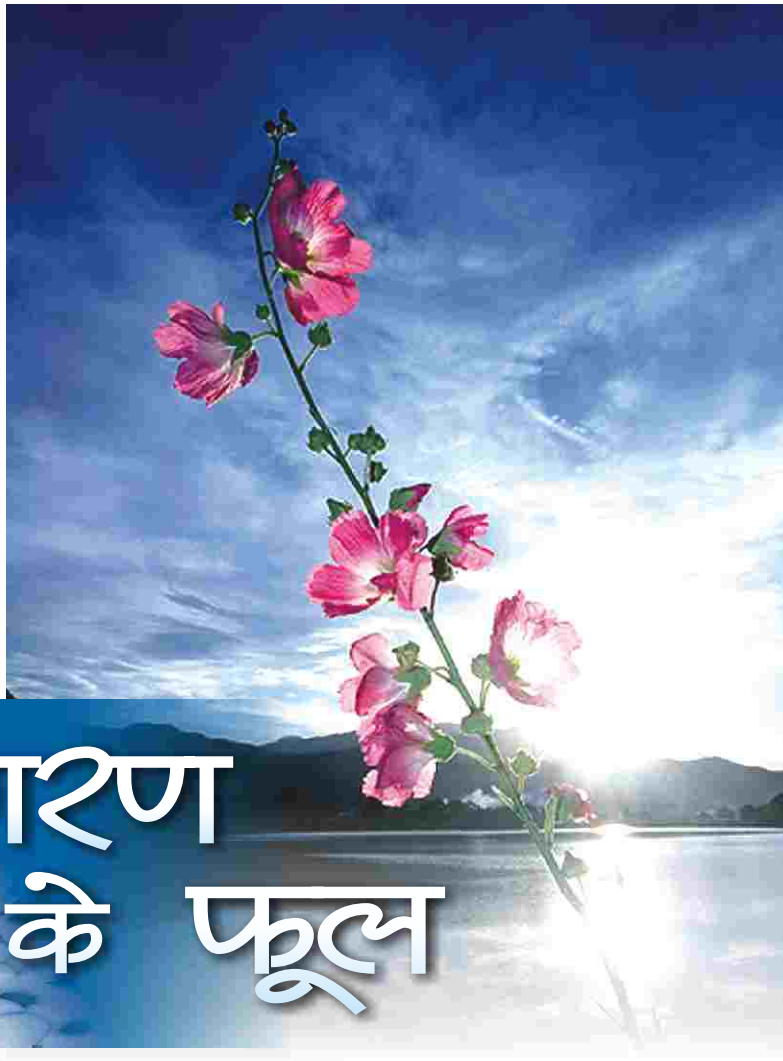

जागरण के फूल

मुख्य बिंदु

मूर्च्छा हमें जकड़े हुए है। जैसे तुम जीवन में क्या कर रहे हो यहां? कोई धन कमाने में लगा है। उससे पूछो, क्या करोगे धन का? उसने कभी सोचा नहीं। तुम उससे ज्यादा पूछो, जिद करो, तो वह तुम पर नाराज भी होगा कि यह कहां की फिजूल बात लगा रखी है? अध्यात्म इत्यादि में मुझे कोई रस नहीं है। मुझे धन कमाने दो। धन ही तो है यहां सार, और क्या है?

इस आदमी ने कभी जाग कर सोचा भी नहीं एक क्षण को कि धन कैसे सार हो सकता है? धन की भला उपयोगिता हो, लेकिन धन जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। धन कमा कर भी क्या करोगे अगर खुद को गंवा दिया? लेकिन वह दौड़ता रहेगा, दौड़ता रहेगा। दौड़ते-दौड़ते गिर जाएगा एक दिन और जीवन भर धन ही इकट्ठा करता रहेगा और मौत आकर उसे उठा ले जाएगी, धन सब पड़ा रह जाएगा। यह मूर्च्छा है। यह कभी-कभी की भूल नहीं है, और न आदत की भूल है, यह बेहोशी की भूल है। यह ध्यान का अभाव है। यह जागरूकता की कमी के कारण हो रहा है।

कोई आदमी पद के लिए दौड़ में लगा है; वह यह पूछता भी नहीं कि पहुंच कर भी क्या करूंगा? पहुंच भी गया तो क्या होगा? मैं बन भी गया दुनिया का सम्राट तो उससे सार क्या है? ऊंचे से ऊंचे सिंहासन पर बैठ गया, फिर? फिर होगा क्या? मैं तो मैं ही रहूंगा। कोई सिंहासन तुम्हें ऊंचा नहीं कर सकता, ऊंचा होने का भ्रम दे सकता है। तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। ऊंचाइयां भीतर होती हैं, बाहर सिंहासनों पर नहीं होतीं। और धन भी भीतर घटता है, बाहर तिजोरियों में इकट्ठा नहीं होता। इसलिए कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि बुद्ध और महावीर जैसा भिक्षु, नग्न खड़ा, ऐसा धनी होता है कि समृद्ध से समृद्ध आदमी फीके पड़ जाते हैं। और तुम धनियों को देखते हो, उनके चेहरे पर मक्खियां उड़ रही हैं। उन्होंने पाया क्या है? मिला क्या है? एक मूर्च्छा है। और सारे लोग दौड़ रहे हैं, वे भी दौड़ रहे हैं। तुमने कभी खड़े होकर सोचा नहीं रास्ते के किनारे कि जरा भीड़ से हट कर सोच भी तो लूं—मैं कहां जा रहा हूं? इतना समय कहां, इतनी फुर्सत कहां, क्योंकि इतनी देर में दूसरे लोग आगे निकल जाएंगे।

ध्यान का इतना ही अर्थ होता है कि दौड़ती भीड़ में से थोड़ी देर को हट जाओ, राह के किनारे बैठ जाओ, थोड़ी देर शांत होकर जीवन को देख तो लो-तुम क्या कर रहे हो? किसलिए कर रहे हो? इससे होगा क्या? हारे तो भी हारोगे, जीते तो भी हारोगे, तो करने का प्रयोजन क्या है

सोचने का समय ही नहीं मिलता, दौड़ ऐसी चल रही है। और जहां सब दौड़े जा रहे हैं वहां शिथिल होकर चलना, या किनारे होकर खड़े होना—लोग समझते हैं : पागल हो गए हो क्या? क्या कर रहे हो यहां?

ध्यान का इतना ही अर्थ होता है कि दौड़ती भीड़ में से थोड़ी देर को हट जाओ, राह के किनारे बैठ जाओ, थोड़ी देर शांत होकर जीवन को देख तो लो—तुम क्या कर रहे हो? किसलिए कर रहे हो? इससे होगा क्या? हारे तो भी हारोगे, जीते तो भी हारोगे, तो करने का प्रयोजन क्या है? सफल हुए तो भी असफल हो जाने वाले हो, असफल हुए तब तो असफल हो ही। यहां विषाद ही अंत में हाथ लगने वाला है। जिस व्यक्ति ने थोड़ा सा राह के किनारे हट कर एकांत में बैठ कर सोचा है, समझा है, विमर्श किया है, वह फिर इस दौड़ में सम्मिलित न हो सकेगा। उसे धन और पद की दौड़ मूढ़तापूर्ण मालूम होगी। अज्ञान की दौड़ मालूम होगी। और जिस दिन यह मूर्च्छा टूट जाती है, उस दिन व्यक्ति भीतर की यात्रा पर निकलता है, अंतर्यात्रा पर निकलता है।

तो तीसरा अपराध है मूर्च्छा का। शांडिल्य कहते हैं : इन तीन अपराधों में पहला अपराध तो नाममात्र को अपराध है, उसकी बहुत चिंता मत लेना। दूसरा अपराध बड़ा अपराध है, आदतें बहुत जोर से पकड़े हुए हैं। कोई शराब पी रहा है, वह आदत है। कोई सिगरेट पी रहा है, वह आदत है। कोई

जुआ खेल रहा है, वह आदत है। कोई चोरी कर रहा है, वह आदत है। मैंने सुना है कि महाराष्ट्र के एक संत एकनाथ यात्रा पर जाते थे, तो गांव के बहुत लोग उनके साथ जा रहे थे। उन दिनों यही रिवाज था कि अगर तीर्थयात्रा पर भी जाना हो तो किसी संत के साथ जाना। क्योंकि संत के साथ जाओगे तो ही तीर्थ पहुंचोगे। अकेले चले जाओगे, तीर्थ आ भी जाएगा, मगर तुम पहुंचोगे नहीं, क्योंकि तुम्हें तीर्थ का कुछ पता ही नहीं है। जो पहुंच गया हो तीर्थ, उसके साथ तीर्थयात्रा पर लोग जाते थे। तो गांव के बहुत लोग एकनाथ के साथ हो लिए। गांव का एक चोर भी—जाहिर चोर; छोटे गांव जब थे दुनिया में तो सभी चीजें जाहिर थीं कि कौन चोर है, कौन जुआरी है, कौन शराबी है; छोटे गांव में बचे क्या? छिपे क्या?

मैं एक बहुत छोटे से गांव में पैदा हुआ—बचपन में अपने नाना के घर रहा। इतना छोटा गांव था कि मुश्किल से कोई ढ़ाई सौ, तीन सौ आदमी थे। सब परिचित थे। एक रात एक चोर घुस आया। मुझे भलीभांति याद है। मेरे नाना को आदत थी दिन-रात पान चबाने की। छोटा सा घर। उन्होंने मुझे भी उठा लिया, और मुझसे बात करने लगे; मेरी नानी को भी उठा लिया; और पान लगा-लगा कर, वे चबा-चबा कर थूकने लगे। वह चोर बैठा है एक कोने में, वे उसी पर थूक रहे हैं। जब वह चोर, बरदाश्त के उसके बाहर हो गया, तो भाग गया। दूसरे दिन सुबह वह आया दुकान पर उनकी और कहा कि खूब किया, सारी कमीज खराब कर दी! छोटा गांव, चोर भी जानता है, साहूकार भी जानते हैं—कौन कहां है? कौन क्या कर रहा है? और वह कह भी गया आकर कि हद कर दी, चोरी का तो मौका ही कहां दोगे, रात भर तुम जागते ही रहे, और मेरी कमीज भी खराब कर दी! तो मेरे नाना ने उससे कहा, कोई फिकर न करो, कमीज तुम यहां से दूसरी ले जाना। मगर सोच-समझ कर आया करो! कहां आ गए? थोड़ा खयाल रखा करो। कमीज तुम ले जाना दूसरी, तुम्हारी कमीज खराब हो गई।

वह चोर भी एकनाथ के साथ जाना चाहता था, उसने कहा कि मैं भी चलूंगा।

एकनाथ ने कहा कि भाई, तेरी आदत पुरानी है—वह दूसरे नंबर का अपराधी था—तू चूकेगा नहीं अपनी आदत से। हम तुझे भलीभांति जानते हैं। क्योंकि मौके आए होंगे कि वह एकनाथ तक की चीजें चुरा ले गया होगा। कि तू भाई, न ही जा तो अच्छा। क्योंकि कई लोग जत्थे में होंगे, और तू चीजें-बीजें चुराएगा और परेशानी खड़ी होगी। तू बाज न आएगा, लंबी यात्रा है, फिर तुझे बीच से भेज भी न सकेंगे, लोग शिकायत भी करेंगे।

पर उस चोर ने कहा, मैं कसम खाता हूं, अब आपके सामने क्या, कसम खाता हूं कि चोरी नहीं करूंगा। जिस दिन से यात्रा शुरू होगी उस दिन से लेकर जिस दिन यात्रा अंत होगी, तब तक चोरी नहीं करूंगा। आगे की मैं नहीं कहता। मगर यात्रा में नहीं करूंगा, यह तो आप वचन मेरा स्वीकार करो।

एकनाथ ने कहा, ठीक है।

दिन अच्छे थे वे। अब तो तुम साहूकार के वचन का भी भरोसा नहीं कर सकते, तब चोर के वचन का भी भरोसा किया जा सकता था। तब डाकुओं में भी एक भलापन होता था, अब भले आदमियों में भी डाकू हैं। चोर ने कहा तो एकनाथ ने मान लिया कि ठीक है। और चोर ने अपने वचन का पालन किया। महीनों लगे यात्रा में, लेकिन उसने चोरी न की।

लेकिन एक उपद्रव शुरू हुआ। उपद्रव यह हुआ कि एक आदमी के बिस्तर की चीजें दूसरे आदमी के बिस्तर में मिलें। किसी के संदूक की चीजें किसी और के संदूक में मिलें। मिल तो जाएं, लेकिन चीजें गड़बड़ होने लगीं। एकनाथ को शक हुआ। उन्होंने पूछा उसको कि भई, तू कुछ कर तो नहीं रहा है?

उसने कहा कि देखिए, आपसे मैंने कहा कि चोरी नही करूंगा, सो मैं नहीं कर रहा हूं। लेकिन मेरा अभ्यास तो मुझे जारी रखना पड़ेगा। रात मुझे नींद ही नहीं आती। तो मैं चुरा तो नहीं रहा हूं, एक चीज मैने नहीं चुराई है, मगर उसके खीसे से निकाल कर उसके खीसे में कर देता हूं तो मुझे राहत मिलती है। फिर मैं निश्चित हूं, जब दो-तीन बजे रात को कुछ काम कर लिया, फिर सो जाता हूं। अब इसमें आप बाधा न दो। चीजें मिल ही जाएंगी उनको, सभी यही हैं, कोई कहीं जाता नहीं है। मगर आप जानते ही हो, लौट कर फिर मुझे काम तो अपना चोरी का करना ही पड़ेगा, तो अभ्यास। ऐसे अभ्यास चूक जाए! उस चोर ने कहा, देखो, आप भी रोज भगवान की प्रार्थना करते कि नहीं? ऐसे मेरा यह काम है।

तुम्हारे पास धन न हो, फिकर मत करना; तुम्हारे पास पद न हो, फिकर मत करना; तुम अपने को तो चढ़ा ही सकते हो। तुम्हीं वास्तविक धन हो। तुम अपने भावों को तो चढ़ा ही सकते हो। फिर दो पत्ते भी पर्याप्त है

तो एक अभ्यास, आदत से काम हो रहे हैं। वे ज्यादा घातक हैं पहले से। उनसे भी ज्यादा घातक तीसरे हैं। जो अभ्यास से भी ज्यादा गहरे हैं, आदत से भी ज्यादा गहरे हैं। क्योंकि किसी को सिगरेट पीनी हो, शराब पीनी हो, तो सीखनी पड़ती है; लेकिन लोभ अनसीखा है, क्रोध अनसीखा है। किसी को जुआ खेलना हो, तो सीखना पड़ता है। सीखोगे तो ही सीख पाओगे। जुआरियों का सत्संग मिलेगा तो सीख पाओगे। चोरों के साथ रहोगे तो चोरी सीख लोगे। लेकिन लोभ, क्रोध, काम, मोह, उनको सीखना नहीं पड़ता। उनको हम जन्म के साथ लेकर आए हैं। वह हमारे जन्मों-जन्मों की मूर्च्छा है।

शांडिल्य ने ठीक विभाजन किया, ये तीन अपराध है। तीसरा अपराध सबसे ज्यादा खतरनाक है, उसे तोड़ो। और जब तीसरा टूट जाता है तो दूसरे के टूटने में बड़ी आसानी हो जाती है। जो स्वभाव को बदल ले,

उसको आदत बदलने में कितनी देर लगेगी? आदत तो ऊपर-ऊपर है। और जिसका दूसरा समाप्त हो जाता है, उसका पहला भी समाप्त होने लगता है। क्योंकि जितना जागरूक होता है व्यक्ति, उतनी ही आकस्मिक घटनाएं घटनी बंद हो जाती हैं। वह सम्हल कर चलता है, किसी के पैर पर पैर नहीं पड़ता। वह होशपूर्वक जीता है। फिर भी पहले तरह की घटनाएं शायद कभी घट सकती हैं। उनका कोई बहुत मूल्य नहीं है। क्षमा मांग लेने से उनकी क्षमा हो जाती है। मगर दूसरे और तीसरे पर ध्यान रखना। सबसे ज्यादा तीसरे पर ध्यान रखना।

'निमित्त, गुण और अनपेक्षा के अनुसार अपराध की व्यवस्था है।'

पत्रादेः दानम् अन्यथा हि वैशिष्टयम्।

'पत्र, पुष्प आदि दान में एक ही फल है।'

जागरूक होकर जीओ, फिर परमात्मा को तुम कुछ भी चढ़ा दो, फल एक है। यह बड़ा अदभुत सूत्र है। तुम जाकर कोहिनूर हीरा चढ़ा दो, या बेलपत्री चढ़ा दो; सोने के ढेर लगा दो, या एक फूल चढ़ा दो, या फूल की पंखुड़ी ही सही, फल एक है। जागरूक व्यक्ति के द्वारा कुछ भी चढ़ाया जाए परमात्मा को, फल एक है। परमात्मा के सामने न तो सोने का ज्यादा मूल्य है, और न फूल का कम मूल्य है। तुमने लाखों चढ़ाए कि दो-चार कौड़ियां चढ़ाईं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने चढ़ाया, इससे फर्क पड़ता है।

स्मृतियों ने कहा है : देवतः भक्तिमिच्छन्ति।

'अर्थात फल उतना ही होगा जितनी भक्ति है।'

क्या दिया, यह नहीं; वरन कैसे दिया, किसी भाव से दिया, किस हृदय से दिया।

देवताः भक्तिमिच्छन्ति।

देवता तुम्हारा भाव देखते हैं, तुम्हारी भक्ति देखते हैं। तो कभी-कभी ऐसा हो जाता है, एक धनी आदमी हजार रुपये भी दे देता है जाकर मंदिर में, मगर भाव बिलकुल नहीं होता। उसे हजार से कुछ फर्क ही नहीं पड़ता, दिए न दिए। और कभी कोई आदमी जाकर दो पैसे चढ़ा देता है; लेकिन तब भी फर्क पड़ता है। हो सकता है जिसने दो पैसे चढ़ाए उसके पास बस दो पैसे ही थे। उसने अपना सर्वस्व चढ़ा दिया। जिसने हजार रूपये चढ़ाए उसके पास करोड़ों थे, उसने कुछ भी नहीं चढ़ाया। परम अर्थों में गुण का मूल्य है, मात्रा का नहीं।

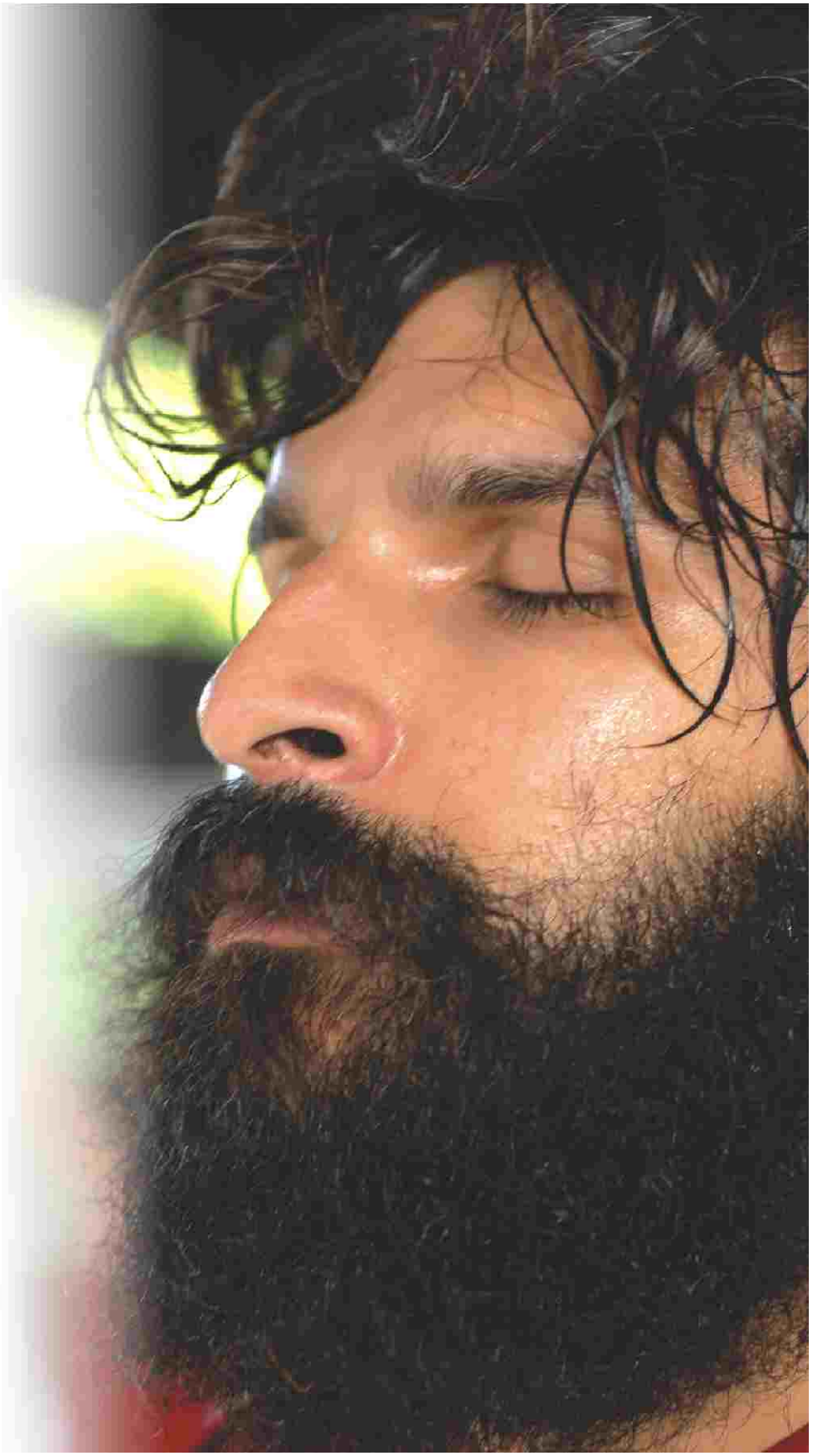

देवताः भक्तिमिच्छन्ति।

एक छोटे से गीत को सुनो। कवि यात्रा पर जा रहा है, मित्र उसे विदा करने आए हैं।

पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए
एक चला नक्षत्र गगन में
और विदा की आई बेला,
और बढ़ा अनजान सफर पर,
लेकिन मैं सामान अकेला,
और तुम्हारा सबसे न्यारा–
पर मैंने उस दिन पहचाना
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

रस्म सदा से जो चल आई
अदा उसे करना मुश्किल क्या,
किसको इसका भेद मिला है
मुंह क्या बोल रहा है, दिल क्या
पिघले मन के साथ मगर था
जारी यह संघर्ष तुम्हारा,
शकुन समय अशकुन का आंसू पलक-पुटों से ढलक न जाए
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

पहली ही मंजिल पर सारे
फूल और कलियां कुम्हलाई,
मुरझाए कुसुमों पर किसने
आज तलक ममता दिखलाई,
कलक बहुत हो उनकी, फिर भी
अलग उन्हें करना पड़ता है,
सुधि के अंग बने वे जलकण जो कि तुम्हारे दृग में आए
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

दिया भी नहीं कुछ, सिर्फ आंसू आ न जाएं आंखों में, इन्हें छिपाया। क्योंकि शकुन के क्षण में आंसू कहीं अपशकुन न मालूम पड़ें। लेकिन सब दिए गए पुष्प-गुच्छ व्यर्थ हो गए, जल्दी ही सूख गए, कुम्हला गए।

सुधि के अंग बने वे जलकण जो कि तुम्हारे दृग में आए
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

जो छिपाया और दिया भी नहीं, वहीं पहुंचा। भाव परखे जाते हैं। अंतिम कसौटी भाव की है।

किसको इसका भेद मिला है
मुंह क्या बोल रहा है, दिल क्या

तुम मुंह से क्या बोलते हो, वह नहीं है प्रार्थना। तुम्हारा दिल क्या बोलता है, वही है प्रार्थना।

'पत्र, पुष्प आदि दान में एक ही फल है।'

इसलिए यह चिंता मत करना कि मुझ गरीब के पास क्या है? मैं क्या चढ़ाऊं? भाव की दृष्टि से तुम सभी सम्राट हो। भाव की दृष्टि से भगवान ने सभी को समान बनाया है। वह काव्य भाव का सभी को बराबर दिया है। तुम्हारे पास धन न हो, फिकर मत करना; तुम्हारे पास पद न हो, फिकर मत करना; तुम अपने को तो चढ़ा ही सकते हो। तुम्हीं वास्तविक धन हो। तुम अपने भावों को तो चढ़ा ही सकते हो। फिर दो पत्ते भी पर्याप्त है।

दो नैन कमल।
घूंघट में घनेरी रात लिए
आंचल में भरी बरसात लिए
कुछ पाए हुए, कुछ खोए भी
कुछ जागे भी, कुछ सोए भी
चंचल ऊषा के बान लिए
गंभीर घटा का मान लिए
सावन के सजल संगीत भरे
कुछ हार भरे, कुछ जीत भरे
कुछ बीते दिनों की करवट-सी
कुछ आते दिनों की आहट-सी
किन गलियों दीप जलाए सखी।
ये भंवरे कित मंडलाए सखी।
सपनों से बोझल-बोझल
दो नैन कमल।

कुछ घबराए, कुछ शर्माए
कुछ शर्मा-शर्मा इतराए
सखी! भेदी भेद न पा जाए
कुछ उलझी-सुलझी आशाएं
कुछ बूझी-बूझी भाषाएं
कुछ बिखरे-बिखरे राग लिए
कुछ मीठी-मीठी आग लिए
अनुराग लिए, वैराग लिए
कुछ बीते दिनों की करवट-सी
कुछ आते दिनों की आहट-सी
किन गलियों दीप जलाए सखी।
नैनों से ओझल-ओझल
दो नैन कमल।
दो नैन कमल।

पर्याप्त है। प्रार्थना पूरी हो गई। हृदय भर आया, पर्याप्त है, प्रार्थना पूरी हो गई। तुम झुक गए। देह झुकी या न झुकी, गौण है। प्राण झुक गए। प्रार्थना पूरी हो गई।

पुकारो—आंसुओं से, भाव से, प्राणों से। चढ़ाओ अपनी निजता, कुछ और चढ़ाने का प्रयोजन नहीं। तुम्हारा धन परमात्मा के सामने धन नहीं है। परमात्मा के सामने सिर्फ तुम्हारा जीवन ही धन है।

गमे-फिराक में दिल अश्कबार रहता है
न दिन को चैन न शब को करार रहता है
हर-एक लम्हा मुझे इंतजार रहता है
अब इंतजार की घड़ियां मेरी बिता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ
पुकारो!
मेरे रफीक। मेरे दिल-नवाज आ जाओ

मेरे मित्र, मुझे ढाढ़स बंधाने वाले। पुकारो!

मेरे रफीक। मेरे दिल-नवाज आ जाओ
तसव्वुरात पर दिन-रात छाए रहते हो
खयाल-ओ-ख्वाब की दुनिया बसाए रहते हो
अगर्चे रूह के अंदर समाए रहते हो
मगर जो आग है दिल में उसे बुझा जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

निगाहें ढूंढती है तुमको लालाजारों में
तलाश करता है दिल तुमको चांद-तारों में
खयाल रहता है हर वक्त कोहसारों में
भटक रही हूं, निशां अपना कुछ बता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

तुम्हारी याद को दिल से लगाऊंगी कब तक
गमे-फिराक के सदमे उठाऊंगी कब तक
उम्मीदो-दीन की दुनिया बसाऊंगी कब तक
मैं जान हार रही हूं, मुझे जिता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

पुकारो उस परम मित्र को, उस परम प्यारे को। तुम्हारी पुकार तुम्हारा पूरा हृदय हो। तुम्हारी पुकार में तुम्हारे सारे प्राण समा जाएं। तुम्हारी पुकार तुम्हारी समग्रता से उठे। बस वही भक्ति है। और सब आयोजन व्यर्थ हैं। और सब विधि-विधान दो कौड़ी के हैं। शांडिल्य ने उन्हें यतन कहा है, भजन नहीं। बुद्धि से जो होता है, यतन; भाव से जो होता, भजन। भजन से मिलता है भगवान। यतन से शायद संसार मिलता है। यत्न करोगे, धन कमा लोगे, पद कमा लोगे। लेकिन भगवान न तो यत्न से मिलता है, न प्रयास से। भगवान मिलता है जब तुम झुक जाते, परम हार में झुक जाते। जब तुम कहते हो, मेरे किए कुछ भी न होगा। जब तुम यह भ्रम ही तोड़ डालते हो कि मैं कुछ कर लूंगा, जब तुम्हारी असहाय अवस्था चरम शिखर पर पहुंचती है। बस उसी क्षण—उसी क्षण प्यारा आ जाता है।

जागरूक व्यक्ति के द्वारा कुछ भी चढ़ाया जाए परमात्मा को, फल एक है। परमात्मा के सामने न तो सोने का ज्यादा मूल्य है, और न फूल का कम मूल्य है। तुमने लाखों चढ़ाए कि दो-चार कौड़ियां चढ़ाईं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने चढ़ाया, इससे फर्क पड़ता है

अगर नहीं आया है प्यारा, तो तुमने पुकारा नहीं, इतना ही स्मरण रखना। या तुमने पुकारा तो तुम्हारी पुकार झूठी थी। या तुमने पुकारा तो तुम्हारी पुकार हार्दिक न थी। या तुमने पुकारा तो तुमने शास्त्र की भाषा बोली, अपने प्राणों की भाषा नहीं बोली।

तुम्हारी प्रार्थना को तुम्हारे भीतर ही जन्मना है। जैसे फूल अपने पौधे पर जन्मता है, वैसे हर एक की प्रार्थना हर एक के जीवन में जन्मती है। और किसी की प्रार्थना तुम्हारी प्रार्थना नहीं बनेगी। मेरी प्रार्थना मेरी प्रार्थना है, तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारी प्रार्थना है। मेरी प्रार्थना को तोड़ कर तुम पर लगा दूंगा, वह फूल तुमसे जुड़ेगा नहीं। वह उधार होगा। उससे तुम चाहे सज जाओ थोड़ी देर को, दुनिया को धोखा हो जाए, लेकिन उससे तुम्हारी रसधार न जुड़ेगी। वह जल्दी ही कुम्हला जाएगा, जल्दी ही गिर जाएगा। वह झूठा है। झूठे से बचो।

आज के सूत्रों का सार है इतना ही कि तुम पराए से बचो, अपने को तलाशो, अपनी निजता से एक इंच भी चलो तो बहुत है और किसी और के कंधे पर चढ़ कर हजार मील भी चले तो तुम चक्कर ही काटते रहोगे कोल्हू के बैल की तरह, कहीं पहुंचोगे नहीं। और ऐसा नहीं है कि तुमने प्रार्थना नहीं की है, कि तुम मंदिर नहीं गए, मस्जिद नहीं गए, गुरुद्वारे नहीं गए, तुम गए हो, मगर पहुंचे कहां? जरूर तुम कोल्हू के बैल की तरह चल रहे हो।

जागो! जाग कर अपनी जीवन-दशा को ठीक से पहचानो। उस जागरण में, उस समझ में एक बात तुम्हें स्पष्ट दिखाई पड़ जाएगी—उधार से काम चलने वाला नहीं है। परमात्मा सिर्फ तुम्हें स्वीकार करेगा। तुम किसी और के चेहरे लगा कर गए तो तुम चूकते जाओगे। तुम्हें अपना ही चेहरा खोजना पड़ेगा। और वह चेहरा अभी उपलब्ध है, जरा मुखौटे हटाने पड़ेंगे—हिंदू का मुखौटा, मुसलमान का मुखौटा, ईसाई का मुखौटा, जैन का मुखौटा, शब्दों के मुखौटे। हटा दो सब। नग्न होकर पुकारो उसे, और मिलन सुनिश्चित है।

— ओशो

अथातो भक्ति जिज्ञासा, दूसरा भाग,
सत्ताइसवां प्रवचन
(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)